ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, PP-428-430,YEAR-2015

कालिदास की रचनाओं में गुण शब्दों की निरुक्ति और अर्थवत्ता

❑ डॉ0 बृजमोहन शुक्ल

काव्य शरीर की चर्चा करते हुए विद्वानों ने शब्दार्थ को काव्य का शरीर, रस को काव्य की आत्मा, गुण को आत्मा के दया आदि धर्म के दोषों को अन्धत्व आदि दोष तथा अलंकार को कटक–कुण्डल आदि के समान माना है।

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक वामन "गुण" को "रीति" का आवश्यक तत्व मानते हैं। उनके अनुसार विशिष्ट पद रचना रीति है और गुण उसके विशिष्ट आत्मरुप धर्म हैं।[1] दण्डी गुणों को वैदर्भमार्ग का प्राण मानते हैं।[2] गुण शब्द का अर्थ है – दोषाभाव, विशेषता, आकर्षकत्व अथवा शोभाकारी धर्म। काव्यशास्त्र में भी यह तत्व दोषाभाव तथा काव्य के शोभाकारी धर्म के रुप में है भरत दोष विपर्यय को गुण कहते हैं।

अतएव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्तिताः[3]।

शोध विस्तार– दण्डी के अनुसार गुण काव्य के शोभा विधायक धर्म हैं। वामन भी शोभा विधायक धर्म को गुण कहते हैं।

काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मागुणाः।[4]

मम्मट गुणों को रसाश्रित मानते हुए कहते हैं कि आत्मा में शौर्यादि गुणों की भांति अंगीभूत रस के उत्कर्षकारी स्थिर गुणधर्म है।

ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवत्वमनः।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युर्चला तयो गुणाः।।[5]

आचार्य मम्मट ने शौर्यादि के समान गुणों को रस का धर्म माना है। जिस प्रकार शौर्यादि आदि आत्मा के उत्कर्ष होते हैं उसी प्रकार गुण रस के उत्कर्ष होते हैं। इनकी स्थिति अचल है। इस प्रकार रस एवं गुण परस्पर संबंध हैं,। मम्मट ने गुणों को शब्दार्थ का धर्म नहीं माना है और इस सिद्धांत का खंडन करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार शौर्यादि आदि गुण आत्मा के धर्म है ना कि शरीर के उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण भी रूप आत्मा के धर्म है न कि शरीर के, उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण भी रस रूप आत्मा के धर्म है न कि वर्णादि रूप शरीर के–

आत्मन एव हि यथा शौर्यदायो नाकारस्या तथा रसस्यैव माधुर्यदयो गुणा न वर्णानाम।[6]

पुनश्च वे लिखते हैं कि माधुर्य आदि गुण इसके धर्म है। ये वर्णों पर आश्रित नहीं है ।

गुण संख्या– गुणों की संख्या के विषय में आचार्यों में पर्याप्त मतभेद है। प्राचीन आचार्यों के मतानुसार गुणों की संख्या निरन्तर घटती और बढ़ती रही है, किन्तु आचार्य मम्मट ने भामह तथा आनन्दवर्धन से प्रेरणा ग्रहण कर तीन गुणों को मान्यता प्रदान की है। मम्मट ने वामन निर्दिष्ट दस शब्द गुण तथा दस अर्थ गुणों का माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुणों में समावेश किया है। मम्मट परवर्ती काल में आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट की मान्यता को प्रायः स्वीकार किया गया है –श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता एवं कान्ति।

श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पदसौकुमार्य।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते।।[7]

परवर्ती अग्नि पुराण ने तीन प्रकार के. शब्दगत, अर्थगत तथा शब्दार्थोभयगत गुण मानें हैं। इन तीनों प्रकार के गुणों की संख्या उन्नीस है। शब्दगतश्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सुकुमारता, उदारता सत्य तथा यौगिकी नामक सात गुण है–

असिस्टेंट प्रोफेसर– जगदीश प्रसाद पाण्डेय स्मारक पी. जी. कॉलेज देवपुर अड्डा बाजार –महाराजगंज (उ0प्र0) भारत

श्लेषोलालित्य गाम्भीर्यं सौकुमार्यमुदारता।
सत्येव यौगिकी चेतिगुणः शब्दस्य सप्तधा।।[८]

अर्थगत छः गुण निम्न हैं माधुर्यं, संविधान, **कोमलता, उदारता, प्रौढि तथा सामयिकता।**

माधुर्यं संविधानं च कोमलत्वमुदारता।
प्रौढिः सामयिकत्वं च तद्भेदा षट् चकासति।।

शब्दार्थोपगतः छः गुण निम्न हैं प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य उदारता, पाक तथा राग।

तस्य प्रसादः सौभाग्यं यथासंख्यमुदारता।
पाको राग इति प्राज्ञौ षट् प्रयज्याः प्रपर्चिता।।

आनन्दवर्धन ने द्रुति दीप्ति और व्यापकत्व के आधार पर माधुर्य ओज तथा प्रसाद नामक तीन गुण माने हैं। आनन्दवर्धन का प्रभाव मम्मट पर है मम्मट ने वामन के गुणों का इन्हीं तीन गुणों में समाहार कर किया है। पीयूषवर्ष जयदेव ने गुणों की संख्या आठ मानी है . श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य और उदारता।[९]

गुण के लिए हमें निरुक्तशास्त्र में भाव शब्द प्राप्त होता है। भाव शब्द का शाब्दिक अर्थ "रत्यादिरुप मन के विकार"–विशेष का नाम है।

गुण के लिए "गुण्यते " गुण आमंमणो "।
गुणोण्या सूत्रतत्तुषु।।

"चत्वार धर्नुर्गुणस्य– यहां एक प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि जहां नाम और आख्यात दोनों में ही भाव की प्रधानता हो, तब यह कैसे सिद्ध होगा कि कौन सा पद नाम है और कौन सा आख्यात?

पचति में भाव की प्रधानता है यह तो ठीक है, किन्तु पंक्तिः पद में भी तो भाव की ही प्रधानता है। यहां लिङ्ग –संख्या–समवेत द्रव्य अर्थात् सत्व की प्रधानता बिल्कुल नहीं है इनमें भी पचति की तरह दो ही अंश है पच् धातु का अर्थ क्तिन् प्रत्यय का अर्थ पचति में जैसे धात्वर्थ की प्रधानता है और संख्या कर्तृ रूप अर्थ होते हुए भी गौण है, वैसे ही यहां लिङ्ग –संख्यारुप, प्रत्यार्थ गौण है तथा पकाव रुप भाव ही प्रधान है। ऐसी स्थिति में पंक्तिः पाकः आदि भाव शब्दों को आख्यात कहेंगे कि नाम?

इस प्रश्न का उत्तर भगवान यास्क ने इन पंक्तियों से दिया है–

पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्टे व्रजन्ति पचतीति। उपक्रमभृत्यपकपिर्यन्तं मूर्तं सत्यभूतं सत्वनामनियाचष्टे व्रज्या पक्तिरिति। अर्थात् आख्यात से तो पूर्व अपर आदि स्थितियों में ही गुजरता हुआ भाव प्रकट किया जाता है जैसे व्रजति आख्यात से लक्ष्य की ओर जाना शुरू करने से लेकर लक्ष्य तक पहुंचने तक की जितनी अवस्थाएं हैं वे पूर्व– ऊपर यह पहले यह बाद में . इस प्रकार अविच्छिन्नभाव अर्थात् क्रिया की सन्तान से व्यक्त की जाती है। इसके विपरीत उपश्रम से लेकर अपवर्ग क्रिया की चरम अवस्था तक का भव मूर्त सिद्ध रुप में लिङ्ग संख्या से युक्त द्रव्य की तरह उस स्थिति को पहुंचा हुआ तत्वप्रधान नाम पदों से व्यक्त किया जाता है।

द्रव्य में स्थित क्रिया– इसका न कोई अपना लिङ्ग होता है और न संख्या। द्रव्य के लिङ्ग भेद से क्रिया में कोई अन्तर नहीं आता। इसलिए संस्त में क्रियाशब्द का कोई लिङ्ग होता है, वस्तुतः वे क्रियाशब्द न होकर द्रव्य के विशेषण के रुप में प्रयुक्त .दन्त आदि प्रकार के शब्द होते हैं। इसीलिए आचार्य विष्णगुप्त ने कहा भी है लिङ्ग की विशिष्टता से रहित तथा क्रिया का अभिधायक (शब्द) आख्यात होता है।[१०]

भाव शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है होना। (सत्ता) भूघञ् (धातु के अपने ही अर्थ में .त प्रत्यय) ।होना द्रव्य का ही धर्म है। कोई स्वतंत्र, मूर्त पदार्थ नहीं। द्रव्य की अवस्था प्रतिक्षण बदलती रहती है। परन्तु उस अवस्था के सूक्ष्म तथा हमारे कारणों के स्थूल होने के कारण हम प्रत्येक अवस्था का ज्ञान नहीं कर पाते। बच्चा प्रतिक्षण बड़ा हो जाता है, पर हम महीने –बीस दिन के बाद ही अनुभव कर पाते हैं कि बच्चा बड़ा हो गया। यह बदलती अवस्था ही भाव कहलाती है। इस प्रसंग में महाकवि माघ की यह उक्ति अत्यंत सटीक लगती है–

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रुपं रमणीयतायाः।"

पुष्प अभी खिला हुआ है। उसके समस्त अवयवों में एक अनुपम कसाव, सुन्दरता और ताजगी

है। कुछ समय बाद हम पाते हैं कि न तो वह कसाव ही है, न सुन्दरता, न ताजगी। हम कहते हैं पुष्प को कुछ हो गया है। इस होने अर्थात् पुष्प के इस अवस्था भेद को हम मुरझाना नामक भाव कहते हैं। इस अवस्था भेद की विभिन्न विशेषतायें दर्शाने के लिए हम इसके वाचक शब्द में तरह–तरह के प्रत्यय लगाते हैं। इस विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि –

क– हम भाव का ज्ञान साक्षात नहीं कर सकते। द्रव्य के माध्यम से ही, अर्थात् उसमें किसी भाव का अनुमान करते हैं। अतः भाव कोई मूर्त सत्व नहीं है, अपितु अमूर्त एवम् अनुमेय है।

ख– द्रव्य का एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना ही भाव है।

भाव के भेद– भाव शब्द क्रिया का पर्याय है। यास्क ने क्रिया के दो भेद बताए हैं और वे हैं अमूर्त भाव तथा मूर्त भाव। व्याकरण की शब्दावली में इन्हें ही क्रमशः साध्य अवस्था में स्थित भाव तथा सिद्ध अवस्था में स्थित भाव कहा जाता है।[12] भाव के ये दो भेद सामान्य अभिव्यक्ति की दृष्टि से हैं। स्वरूप विशेष की .ष्टि से भाव छः प्रकार के हैं। यह आचार्य वर्ष्यायनी का सिद्धांत है। ये छः भाव, सभी ऊपर की दोनों अवस्थाओं में अभिव्यक्त होते हैं।

1.जन्म, 2.अस्तित्व, 3. परिवर्तन, 4. वृद्धि, 5 क्षय और 6. नाश यह इनकी सिद्ध अवस्था है। 1. जायते, 2. अस्ति, 3. विपरिमते ,4. वर्धते, 5 अपक्षियते और नश्यति साध्य अवस्था है।

यास्क ने जन्म और नाश के विषय में स्पष्ट कहा है कि दोनों भाव विकार क्रमशः आरंभ और अंत का प्रारंभ बतलाते हैं, आरंभ के बाद की तथा अंत के पूर्व की जो स्थिति है वह न तो इनसे प्रकट होती है और न उसका विरोध ही होता है अर्थात जन्म भाव से मुख्य रूप से जन्म ही प्रकट होता है। यो गौण रूप से अस्तित्व भाव भी उसमें समाहित है अतः जन्म से नौ अस्तित्व का आवर्धन होता है और न उसका निषेध ही। इसी प्रकार अपक्षय अर्थात ह्रास भी नाश में समाहित है। किंतु नाश भाव से नाश ही प्रकट होता है ह्रास नहीं। और न ही उसका निषेध होता है। इसी प्रकार अन्य भाव विकारों में भी पूर्वभाव विकार की अपेक्षा रहती है। जगत की विभिन्न क्रियाएं भाव के ही विभिन्न रूप हैं। पर वर्गीकरण की .ष्टि से यास्क के अनुसार वर्ष्यायणी का मत है की उन सबका समाहार इन छः विकारों अथवा वर्गों में ही हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काव्यालंकारसूत्र वृत्ति , १.2.८
2. काव्यादर्श १।४2
3. नाट्यशास्त्र, १७।६६
4. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।
5. ध्वन्यालोक 2।३
6. काव्यप्रकाशवृत्ति ८।६६
7. नाट्यशास्त्र१७।६९
8. अग्नि पुराण
9. वक्रोक्तिजीवितम। १।३०– ५१
10. निरुक्त मीमांसा, पृ. १2७
11. शिशुपाल वधम, सर्ग ११
12. द्र. व्याकरणभूषणसारः, धत्वार्थनिर्णयः, कारिका 2 पृ. 2०

*****